आचार्य मानतुङ्ग विरचित

भक्तामर स्तोत्र

दोहानुवाद

मुनि श्री 108 समतासागरजी महाराज

प्रकाशक

गुरुवर साहित्य प्रकाशन समिति

पावन प्रसंग : आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परम शिष्य मुनि श्री समतासागरजी महाराज, मुनि श्री पुराणसागरजी महाराज, मुनि श्री अरहसागरजी महाराज, ऐलक श्री निश्चयसागरजी महाराज के सान्निध्य में श्री बापजी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र डिग्रस के पंचकल्याणक के अवसर पर प्रकाशित।

कृति : भक्तामर स्तोत्र

रचयिता : आचार्य मानतुङ्ग

दोहानुवाद : मुनि श्री 108 समतासागरजी महाराज

संस्करण : द्वितीय, अप्रैल 2012

प्रतियाँ : 2200

पुण्यार्जक : सचिन जैन – मनीष जैन
सुपुत्र – श्री प्रमोदकुमार जैन
फर्म – प्रेमचन्द प्रमोदकुमार जैन
भगवान महावीर मार्ग
बडौत, जिला–बागपत (उ.प्र.)
मो. : 09456229867

मुद्रक : विकास आफसेट, भोपाल

आचार्य मानतुंग

(कथा-कथन और काल निर्णय)

कथा-कथन :

1. आचार्य मानतुंग जी काशीवासी धनदेव ब्राह्मण के पुत्र थे। पहले श्वेताम्बर साधु थे, पीछे दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली, आप दोनों ही आम्नाओं में सम्मानित हैं। राजा द्वारा 48 तालों में बंद किए जाने की कथा इनके विषय में प्रसिद्ध है। इनका समय राजा हर्ष (ई. 608)के समकालीन होने से ईसा की सातवीं शताब्दी माना गया है।

2. जैसा कि 'भक्तामर स्तोत्र' के अन्य कथानकों से ज्ञात होता है कि यह घटना राजा भोज के समय की है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है - कवि कालिदास व मानतुंगाचार्य में वाद-विवाद हुआ, जिसमें कालिदास की पराजय होने से उन्हें लज्जित होना पड़ा; जिससे उन्होंने राजा भोज को मानतुंगाचार्य के विरुद्ध भड़का दिया। राजा भोज का मद जागृत हुआ। उसने श्री मानतुंगाचार्य को 48 कोठों के भीतर जेलखाने में हथकड़ी व बेड़ी पहनाकर बंद कर दिया और बाहर कड़ा पहरा बैठा दिया। श्री मानतुंगाचार्य जी ने रात्रि में अर्हन्त सर्वज्ञ वीतराग श्री आदिनाथ भगवान की भक्ति में लीन होकर स्तोत्र की रचना की। जब उन्होंने 46 वे काव्य की रचना की तब हथकड़ी व बेड़ी टूट गई और वे 48 कोठों के बाहर आ गए। राजा ने इस चमत्कार को स्वयं जाकर देखा एवं नम्रता से मानतुंगाचार्य के चरणों में नमस्कार करके अपने अपराध की क्षमा याचना की। आचार्य श्री ने राजा को क्षमा कर दिया और फिर वहाँ से विहार कर गए, (इस कथानक के अनुसार यह समय ईसा की दशवीं शताब्दी तय किया जाता है।)

3. आचार्य प्रभाचन्द्र ने 'क्रिया-कलाप' की टीका के अन्तर्गत भक्तामर स्तोत्र टीका की उत्थानिका में लिखा है-

''मानतुंगनामा सिताम्बरो महाकविः निर्ग्रन्थाचार्यवर्येरपनीत-महाव्याधि प्रतिपन्ननिर्ग्रन्थमार्गो भगवन् किं क्रियमामिति ब्रुवाणो भगवता

परमात्मनो गुणगणस्तोत्रं विधियतामित्यादिष्टः भक्तामरेत्यादि।''

अर्थात् मानतुंग श्वेताम्बर महाकवि थे। एक दिगम्बराचार्य ने उनको व्याधि से मुक्त करा दिया, इससे उन्होंने दिगम्बर मार्ग ग्रहण कर लिया और पूछा कि - भगवन्! अब मैं क्या करूँ? आचार्य ने आज्ञा दी कि - परमात्मा के गुणों का स्तोत्र बनाओ। फलतः आदेशानुसार भक्तामर स्तोत्र का प्रणयन किया।

इत्यादि कथा-कथन आचार्य मानतुंग जी के बारे में उपलब्ध होते हैं।

काल विचार :

1. संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान् डॉ. ए. बी. कीथ ने भक्तामर कथा के सम्बन्ध में अनुमान किया है कि कोठरियों के ताले पाशबद्धता संसार बन्धन का रूपक है। इस प्रकार के रूपक छठवीं-सातवीं शताब्दी में अनेक लिखे गये हैं। वसुदेव-डिन्दी में गर्भवास दुःख, विषम सुख, इन्द्रिय सुख, जन्ममरण के भव आदि सम्बन्धी अनेक रूपक बनाये हैं। डॉ.कीथ का यह अनुमान यदि सत्य है, तो इसका रचनाकाल छठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या सातवीं का पूर्वार्द्ध होना चाहिए। डॉ. कीथ ने यह भी अनुमान किया है कि मानतुंग प्रसिद्ध कवि बाण के समकालीन हैं।

2. सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं.गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने 'सिरोही का इतिहास' नामक ग्रन्थ में मानतुंग का समय हर्ष कालीन माना है। श्री हर्ष का राज्याभिषेक ई. सन् 608 में हुआ था। अतएव मानतुंग का समय ई.सन् की 7 वीं शताब्दी का मध्य भाग होना सम्भव है।

3. भक्तामर स्तोत्र के अन्तरंग परीक्षण से प्रतीत होता है कि यह स्तोत्र 'कल्याणमन्दिर' का परवर्ती है। कल्याणमंदिर के रचयिता सिद्धसेन का समय छठवीं शताब्दी सिद्ध किया जा चुका है।

(तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-2)

पूर्वालोक

'भक्तामर स्तोत्र' अपने आराध्य के प्रति समर्पित किया गया जिन-भक्ति का एक अनुपमेय काव्यार्घ्य है। कहने को तो इसमें मात्र 48 श्लोक ही हैं, पर सचमुच ही इसकी गहराई में उतरा जाये तो भक्ति भावना से जुड़ी प्रभावी साधना का यह समूचा सारदर्शन है। भवदधि पारदायी अपारदर्शन है। ऐसा लगता है कि स्वरूप साधक महाचेता आचार्य प्रवर मानतुंगजी ने अटूट विश्वास के सहारे अपने आराध्य आदि प्रभु को शब्द-शब्द स्वर-बन्धनों में बाँधकर मानो अपने को ही निर्बन्ध बना लिया। भक्ति की इस भाववंत रसधारा में बहकर आचार्य श्री अपने को लघुता के उस आलोक-लोक में ले गये जहाँ से प्रभुता का दिव्य द्वार स्वयमेव खुलता नजर आता है। प्रतिष्ठा और अग्नि परीक्षा के विषम क्षणों में आपने अपनी आस्था निष्ठा से जो मुक्ति गान गाया वह अतिशयकारी ही नहीं मृत्युञ्जयी भी बना। उन्हें मालूम था कि नाभि से उठा यह भगवत् गान मिथ्या अभिमानियों का मानमर्दन तो करेगा ही, जिन शासन की धवलिम ध्वजा को सम्मान के तुंगगिरि पर प्रतिष्ठापित भी करेगा। क्या बतायें यह तो शाश्वत् सत्य के यज्ञ में की गई जीवन-साधना की सम्पूर्ण श्वांसों की आत्मीय-आहुति थी। इसलिए इसे महज घटना ही नहीं अपितु युगों-युगों तक अमिट अक्षरों में लिखा रहने वाला इतिहास माना जाता है।

ऐसे सिद्धसाधक भक्तराज आचार्य प्रवर द्वारा रचा गया यह कमनीय काव्य जैन समाज में ही नहीं बल्कि जैनेतर बंधुओं के बीच भी अपनी चमत्कारी अतिशयता के लिए ख्यात है। कोटि-कोटि कंठों से नित्य प्रातः उच्चारे जाने वाले इस भक्ति स्तोत्र के मोहक शब्द स्वरों से दैहिक और मानसिक सन्ताप तो दूर होता ही है आध्यात्मिक शांति भी मिलती है। विघ्नविनाशी, विपदाहर इस स्तोत्र से जुड़ी हुई जन अनुभूतियाँ इसमें ऋद्धि, सिद्धि और समृद्धि जैसे सुखद फल महसूसते हैं। सच ही है, यह तो धर्म का वह कल्पतरु है, जो बिन चाहे ही वह सब कुछ प्रदान कर देता है, जो हमारी कल्पना के परे है। काव्य की

सौम्यता, स्वरबद्धता और तन्मयता ला देने वाली शोभन शैली तो जग जाहिर है ही किन्तु अक्षर-अक्षर में छिपी हुई भाव-प्रवणता रूप लोकोत्तर विभूति अक्षयी आत्मा की मूक महासत्ता-सी बन पड़ी है। ऐसे महिमावंत काव्य, काव्यकार और काव्याधिपति के प्रति अर्पित श्रद्धा, विश्वास और भक्ति भावनाओं का ही प्रतिफल है यह दोहानुवाद। अर्चित, चर्चित और बहुप्रचलित इस स्तोत्र के अनुवाद का भाव बहुत दिन से मन में समाया था, पर योग बना 1995 भोपाल चातुर्मास में। शहर में ही स्थित श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन झिरनों मन्दिर के सुरम्य शांत वातावरण में तन्मयता आई और कार्य पूर्ण हो गया। स्तोत्र के गहन, गम्भीर अर्थ को दोहों में समेटना दुरूह कार्य तो था, पर लगता है यह भी स्तोत्र का ही प्रभाव रहा और रहा गुरुवर का शुभाशीष, जिसके कारण कार्य की परिपूर्णता में सहजता रही। वैसे इस स्तोत्र पर विगत में अनेक अनुवाद हुए हैं, पर अपने इष्ट आराध्य के प्रति भक्ति-अर्घ चढ़ाने का भाव तो हर आराधक भक्त में रहता ही है। इसी शुभाशय से प्रेरित मैंने यह कार्य किया है। सुबोध जनमानस की पूर्ति के लिए एक पृष्ठ में शीर्षक, श्लोक, दोहा, अन्वयार्थ और भावार्थ के रूप में वैसी और उतनी ही सामग्री परोसी गई है, जो सुपाच्य और मनभावन हो।

पाठ/पारायण की श्रुतभावना से प्रेरित प्रकाशक बन्धु इस काव्यानुवाद कृति को दूर-दराज फैले साफ-सुथरे हाथों तक पहुँचाने का सम्यक् कार्य कर रहे हैं, उनका प्रयास मंगलमय हो। कम समय में भी सरस दोहों की विभिन्न लयों में लय होकर भक्त श्रद्धालुजन आस्था का अर्घ्य अपने परमात्म स्वामी के प्रति अर्पित कर सकें, इसी भव्य भावना और आत्म-अनुभूति के साथ पूज्यपाद गुरुवर आचार्यश्री के करुणाप्लावित कृपाशीष का आकांक्षी होता हुआ -

मुनि समतासागर

शरद पूर्णिमा

वर्षावास, 1995, भोपाल

आमुख

मानतुंग आचार्य का भक्तामर स्तोत्र।
अद्‌भुत अनुपम काव्य है, जिनभक्ति का स्तोत्र॥

–पूज्य मुनिश्री

जन-जन का कण्ठहार 'भक्तामर स्तोत्र' निःसन्देह एक भक्तिपरक उत्कृष्ट काव्य है। प्रत्येक जैन इसे नित्य प्रति गाता और गुनगुनाता रहता है। सभी जैन मन्दिरों और घरों में आये दिन इसके अखण्ड पाठों के आयोजन प्रायः होते ही रहते हैं। संस्कृत-स्तोत्रों में यह सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य है। आचार्य मानतुंग की यह एक ऐसी कालजयी/अमर रचना है, जिसके साथ चमत्कारों की अनेक कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। स्वयं आचार्य मानतुंग इस काव्य की रचना करते-करते बन्धन मुक्त हो गये थे। यह एक व्याधिनाशक एवं संकट-निवारक ललित काव्य है। इसका प्रत्येक छन्द स्वयं में एक मन्त्र है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में इसकी समान मान्यता एवं ख्याति है।

'भक्तामर-स्तोत्र' की लोकप्रियता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि अब तक इस सुमधुर काव्य के हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में शताधिक अनुवाद हो चुके हैं। साहित्य-मनीषी पं.कमलकुमारजी जैन शास्त्री 'कुमुद' द्वारा संकलित इसके 121 अनुवादों का एक संग्रह 'भक्तामर भारती' के नाम से सागर के 'श्री खेमचन्द्र जैन चेरिटेबिल ट्रस्ट' से प्रकाशित भी हो चुका है।

अनुवादों की इसी शृंखला में आज के युग-प्रमुख, प्रखर चिन्तक एवं तपोनिधि परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के प्रिय शिष्यों में से एक कवि हृदय जैन भारती के लाड़ले सपूत पूज्य मुनिश्री समतासागरजी कृत मूल स्तोत्र का यह दोहानुवाद उनकी श्रद्धा, भक्ति और साहित्यिक प्रतिभा के एक सुन्दर उदाहरण के रूप में हमारे सामने है। अब तक चौपाई, छप्पय, कवित्त, सवैया, जोगीरासा-जैसे छन्दों अथवा मेघ मल्हार, भैरवी, सारंग जैसी

राग-रागनियों में इस स्तोत्र के एक-एक श्लोक के चार पंक्तियों से लेकर बारह पंक्तियों तक के अनेक अनुवाद सुलभ हैं, एक-दो सम श्लोकी अनुवाद भी मिलते हैं। एक ही अनुवाद में भिन्न-भिन्न श्लोकों के लिए विभिन्न छन्दों के प्रयोग भी देखने में आते हैं, किन्तु दोहा-सरीखे सबसे छोटे छन्द में किया गया यह पहला सम्पूर्ण अनुवाद है और इसके संदर्भ में 'बिहारी सतसई' के प्रति कथित एक प्रसिद्ध उक्ति की तर्ज पर यह कहना सर्वथा सटीक बैठता है –

भक्तामर के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें, असर करें गम्भीर॥

दोहा हिन्दी का एक लोकप्रिय छन्द है। कबीर, तुलसी, रहीम, बिहारी, बुधजन, भूधर आदि कवियों के दोहों को लोग बड़ी रुचि से पढ़ते-पढ़ाते हैं। यह 'दोहानुवाद' भी अपने भावगाम्भीर्य, प्रसाद गुण, सरस ध्वन्यात्मकता और लघुता के कारण अपेक्षित लोकप्रियता प्राप्त करेगा, इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है।

दोहा छन्द पर पूज्य मुनिश्री का असाधारण अधिकार है। इधर उन्होंने 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार', 'द्रव्यसंग्रह', 'इष्टोपदेश' आदि ग्रन्थों के दोहानुवाद भी किए हैं और उन्हें धर्मप्रेमियों ने बहुत पसन्द किया है। चार पंक्तियों के भाव को मात्र दो पंक्तियों में व्यक्त करना भले ही असाध्य कार्य न हो किन्तु कठिन कार्य तो अवश्य है। कोई सतत् अभ्यासी, सिद्धकवि एवं भावप्रवण व्यक्ति ही इसमें सफल हो सकता है। इस दोहानुवाद के माध्यम से मुनिश्री की इस सामर्थ्य का परिचय हम सबको प्राप्त हो रहा है।

मुनिश्री द्वारा रचित दोहों की भाषा सरल और सरस है। उनमें सर्वत्र ओज और प्रवाह गुण के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ दोहे देखिए –

भक्त अमर नत मुकुट-द्युति, अघतम-तिमिर पलाय।
भवदधि डूबत को शरण, जिनपद शीश नवाय ॥ 1॥
संस्तुति तो तव दूर ही, कथा हरे जग-पाप।
भले दूर, फिर भी खिलें, पंकज सूर्य-प्रताप॥ 9॥
प्रभु-तन जिन परमाणु से, निर्मित शान्त अनूप।

भू पर उतने ही रहे, अतः न दूजा रूप॥ 12॥
विविध सुमन जिन गुण रची माला संस्तुति रूप।
कंठ धरे सो श्री लहे मानतुंग अनुरूप॥ 48॥

मूल स्तोत्र की तरह ही इस अनुवाद का प्रत्येक दोहा मन की कलुषता को दमन करने में समर्थ है। समाज में जो बहिन-भाई संस्कृत श्लोकों का ठीक-ठीक उच्चारण करने में कठिनाई का अनुभव करते हों, उनके लिए यह दोहानुवाद वरदान की भाँति है। मूल श्लोक और उसका अन्वयार्थ तथा भावार्थ देने से तो पुस्तिका की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। पूज्य मुनिश्री ने इसकी रचना यद्यपि स्वान्तः सुखाय ही की है, तथापि प्रकाशकों ने इसे इस रूप में प्रकाशित कर पाठकों के प्रति जो उपकार किया है, तदर्थ वे बधाई के पात्र हैं।

अन्त में इस सुष्ठु एवं सुरुचिपूर्ण कृति के प्रति मैं भी एक दोहा लिखकर सर्जक एवं साधक पूज्य मुनिश्री के निष्ठापूर्ण श्रम को प्रणाम अर्पित करता हूँ -

मन-विकार के हरन को, दोहे औषधि-रूप।
दुःखों का दोहन करें, प्रकटे शुद्ध स्वरूप॥

किमधिकम् ?

इत्यलम्

104, नई बस्ती, फिरोजाबाद — **नरेन्द्रप्रकाश जैन**

दि. 23.6.96 — (सम्पादक जैन गजट)

मन्थन

पूज्य मुनि श्री समतासागरजी द्वारा प्रणीत भक्तामर स्तोत्र का दोहानुवाद संस्कृत से अनभिज्ञ पाठकों के लिए बहुमूल्य उपहार है। इससे शब्द और अर्थ दोनों सुगम हो गये हैं। अब काव्यानन्द के साथ भावानन्द की अनुभूति भी की जा सकती है।

दोहे मुनिश्री की काव्य-प्रतिभा का उन्मुक्त घोष करते हैं। उनकी भाषा यह भाव नहीं देती कि यह संस्कृत पद्यों का अनुवाद है, अपितु ऐसा लगता है जैसे वे मौलिक रूप से ही लिखे गये हों। इसकी प्रतीति निम्नलिखित उदाहरणों से हो जाती है।

मैं अबोध तज लाज तव, थुति करने तैयार।
जल-झलकत शशि बाल ही, पकड़े बिना विचार॥ 13॥
त्रिजग-दुःख-हर प्रभु नमूँ, नमूँ रतन भूमाँहि।
नमूँ त्रिलोकीनाथ को, नमूँ भवसिन्धु सुखाँहि॥ 26॥

दोहों की भाषा में तुलसी, रहीम, भूधरदास आदि के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। निश्चय ही कवि ने दोहा-साहित्य का गहन अध्ययन कर उनकी भाषा को आत्मसात् किया है; तभी उनकी लेखनी से प्रसूत दोहों में इतनी प्रौढ़ता है। अधोलिखित दोहा तो अपनी भाषात्मक चारुता के कारण हृदय की गहराई तक छू लेता है।

शत नारीं शत सुत जनें पर तुम सा नहिं एक।
तारागण सब दिशि धरें, रवि बस पूरब नेक ॥ 22॥

मुनिश्री ने दोहों में परम्परागत लोक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। जैसे - थुति, दूजा, बेरोक, बौर, बखान, करहुँ, लाज आदि इसीलिए उनमें लोक काव्य जैसी मोहकता और सर्वसाधारण की भाषा का स्वरूप आ गया है।

दोहों की उल्लेखनीय विशेषता है गागर में सागर के समान। संस्कृत

पद्यों में जिस भाव को प्रकट करने के लिए अनेक शब्दों और अनेक वाक्यों का प्रयोग किया गया है उस भाव को मुनिश्री ने कुछ ही शब्दों या अत्यन्त छोटे वाक्य में गर्भित कर दिया है, जिससे दोहों में सूत्रों जैसी संक्षिप्तता आ गयी है और सम्पूर्ण अर्थ समासीकृत होकर एक नजर में हृदयंगम हो जाता है। मिताक्षरों में कही हुई बात मस्तिष्क में तुरन्त उतरती है और अमिट हो जाती है। संक्षिप्तता का यह चमत्कार शब्दानुवाद की बजाय भावानुवाद करने से उत्पन्न हुआ है। कोई और होता तो 'पाण्डुपलाशकल्पम्' का अनुवाद 'पलाश के पत्ते की तरह पीला' करता, जो शाब्दिक अनुवाद होता, किन्तु कवि ने उसका अनुवाद 'द्युतिहीन' शब्द द्वारा किया है जो भावानुवाद होने से अत्यन्त संक्षिप्त हो गया है और सर्वसाधारण गम्य भी।

'सकलवाङ्मय-तत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभि' इतने लम्बे विशेषण के अर्थ को **'श्रुतपारग'** इस छोटे से विशेषण के द्वारा ही अभिव्यक्ति कर दिया गया है। **'नाम्भोधरोदर निरुद्धमहाप्रभावः'** के लिए **'मेघ ढके न तेज'** तथा **'स्पष्टीकरोषिसहसा युगपज्जगन्ति'** के लिए **'द्योतित भुवन समस्त'** भावानुवाद द्वारा संक्षिप्तीकरण के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। **'यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति'** का अनुवाद **'कुहुके'** शब्द द्वारा करके तो कवि ने भावानुवाद का श्रेष्ठतम निदर्शन प्रस्तुत किया है, क्योंकि इसमें बिम्बात्मकता का काव्य गुण विद्यमान है। ऐसा लगता है कि दोहों में अन्त्यानुप्रास भी बिना किसी विशेष परिश्रम के अपने-आप घटित होता गया है। इसने काव्य में संगीतात्मक श्रुतिमाधुर्य का समावेश कर दिया है।

कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों के स्थान में प्रयुक्त हिन्दी शब्दों ने अपनी बिम्बात्मकता के कारण उक्ति को लालित्य से परिपूर्ण कर दिया है। जैसे **'त्रय जग जगमग हों प्रभो तुहि वर दीप रहाय'**(16) यहाँ 'प्रकाश' के लिए 'जगमग' शब्द के प्रयोग से उक्ति में लालित्य आ गया है।

सन्त कवि ने 'अनल्पकान्ति' के लिए 'आभ आदम्य' शब्द का प्रयोग किया है, जो बड़ा सशक्त है। 'अदम्य' शब्द भगवान के मुख की आभा को और अधिक अतिशयित रूप में अभिव्यक्ति करने की शक्ति रखता है। यह प्रयोग कवि के शब्द चयन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस ग्रन्थ की एक विशेषता यह है कि इसमें छोटे-छोटे शीर्षकों के द्वारा भक्तामर-स्तोत्र के प्रत्येक पद्य का वर्ण्य विषय संकेतित कर दिया गया है, जो पद्य के अर्थ में प्रवेश करने के लिए प्रवेश-द्वार के समान है।

इससे भी बड़ा लोकोपयोगी कार्य यह किया गया है कि स्तोत्र के प्रत्येक पद्य का शब्दशः हिन्दी अनुवाद दे दिया गया है। जिससे पाठकों को संस्कृत पद्यों के शाब्दिक अर्थ को समझने में बड़ी सहायता मिलेगी और परम्परया वे संस्कृत भाषा को सीखने में समर्थ होंगे। अन्वयार्थ के अन्त में दिया गया भावार्थ पद्य के भाव को समझने में सहायक है।

भक्तामर स्तोत्र के हार्द, हृदयंगम करने के लिए इससे श्रेष्ठ ग्रन्थ अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आया। प्रत्येक श्रद्धालु के लिए यह ग्रन्थ उसी प्रकार संग्रहणीय है जिस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र।

सन्त कवि के श्रीचरणों में सादर नमोऽस्तु ।

प्रो. रतनचन्द्र जैन

भोपाल

भक्तामर स्तोत्र : एक अनुभूति

वचनों के द्वारा गुणों की प्रशंसा करने को स्तवन या स्तुति कहते हैं। जैसे अरहंत प्रभु के लिए ''आप अनंत चतुष्टय से युक्त हैं, आप तीन लोक के नाथ हैं आदि।'' इसी प्रकार की अनेक स्तुतियों के समुदाय को स्तोत्र कहते हैं। जैनदर्शन में गृहस्थ को स्तोत्र पाठ नित्य करने का विधान है। जैसा कहा है –

षोढा क्रियोदिता सद्भिर्देव सेवास गेहिनाम।

(उपासकाध्ययन भाग-1/880)

अर्थ : सन्त पुरुषों ने गृहस्थों के लिए देवोपासना के समय स्तवन, पूजन, स्तोत्र, जाप, ध्यान तथा स्वाध्याय ये छह क्रियायें कही हैं। स्तोत्र पाठ करने का फल भी शास्त्रों में इस प्रकार कहा है –

पूजा कोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्र कोटि समं जपः।
जप कोटि समं ध्यानं, ध्यान कोटि समं लयः॥

अर्थ : एक करोड़ बार पूजा करने के समान एक बार स्तोत्र पाठ का, एक करोड़ बार स्तोत्र पाठ करने के समान एक बार जप करने का, एक करोड़ बार जाप करने के समान एक बार ध्यान करने का तथा एक करोड़ बार ध्यान करने के समान एक बार लय (आत्मलीन) होने का फल होता है।

अर्थात् स्तोत्र पाठ करने का फल पूजा करने से एक करोड़ गुना कहा गया है। यही वजह थी जो हमेशा से महान् आचार्यों ने स्तोत्रों की रचना की तथा आज भी हमारे गाँव-गाँव में, घर-घर में यह परम्परा विद्यमान है कि महिलायें प्रातः उठते ही स्नानादि कर श्री तत्त्वार्थसूत्र एवं भक्तामरस्तोत्र का पाठ या तो स्वयं करती हैं या किसी से अवश्य सुनती हैं। उसके बाद ही अन्य कार्यों में लगती हैं।

भक्तामर स्तोत्र की रचना ईसा की सातवीं शताब्दी अर्थात् आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व हुई थी। यद्यपि इससे पूर्व भी कई स्तोत्रों की रचना हो चुकी

थी और इसके बाद भी बहुत से स्तोत्र लिखे गये, पर वर्तमान में सर्वाधिक लोकप्रियता इसी स्तोत्र को प्राप्त है। जिसके मुख्य कारण इसका निर्बाध प्रवाह, सजीव भक्ति, काव्य की सुन्दरता एवं सरलता जैसे उत्तम गुणों से विभूषित होना है। इसका पद विन्यास, मनोहर अलंकार एवं उदाहरणों का समावेश तथा गुण स्तवन अनुपम है। तभी तो चौदह सौ वर्ष जैसा महान् काल बीतने पर भी, आज जैनधर्म की दोनों परम्पराओं में इस उत्कृष्ट स्तोत्र को विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

शास्त्रों में उस स्तोत्र का फल सर्वोत्कृष्ट बताया है, जो स्वयं के द्वारा भक्तिरस में डूबकर रचा गया हो और इसीलिए प्रचलित कथानक इस बात के साक्षी हैं कि जो और जैसा फल विभिन्न स्तोत्रों के रचयिताओं को प्राप्त हुआ था, वैसा अन्यत्र यदाकदा ही दृष्टिगोचर होता है। फिर भी यदि हम स्वयं स्तोत्र रचना न कर सके केवल स्तोत्र पाठ की ही भावना रखते हों तो इसका उत्तम फल तब ही प्राप्त किया जा सकता है, जब इसका उच्चारण शुद्ध हो, लय सही हो, प्रत्येक शब्द का अर्थ स्पष्ट हो तथा निर्विकल्पता के साथ भक्ति रस में लीन होते हुए, भगवान् की मूर्ति के समक्ष, नेत्र मिलाकर, एकान्त में इसका पाठ किया जाये। वर्तमान में ऐसा कम ही दिखाई देता है। सभी स्तोत्र पाठ करने वाले उच्चारण, लय, अर्थ आदि पर ध्यान न देकर, मात्र पाठ करने के कोरम को ही पूरा करते हुए देखे जाते हैं। परिणामतः समय भी लगता है, पाठ भी किया जाता है, पर भक्ति में तन्मय न होने से, जैसा पुण्य बंध होना चाहिए, वैसा नहीं होता। लिखा भी है – **यस्मात् क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः।** इसकी एक वजह यह भी रही है कि प्रत्येक शब्द के सरलता से अर्थ सिखाने वाली पुस्तक की उपलब्धता न होना तथा अर्थ पढ़ाने वाले की भी प्राप्ति सुलभ नहीं होना। इन दोनों कमियों को दूर करने का प्रयास सफलता पूर्वक किया जा रहा है। परमपूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज के परम शिष्य मुनि श्री 108 समतासागरजी महाराज ने विभिन्न स्तोत्र एवं पाठों के एक-एक शब्द को अलग-अलग करते हुए उनके अर्थ स्पष्ट करने का श्रेष्ठ कार्य प्रारम्भ किया हुआ है। जिसका प्रथम पुष्प, यह भक्तामर स्तोत्र के अर्थ की पुस्तिका है। इसमें पूज्य मुनिश्री ने चार पंक्तियों के काव्य का दो पंक्तियों में अतिसुन्दर व सरल दोहानुवाद भी किया है, जो अत्यन्त सरस तथा भक्तिरस से पूरित व सुबोधगम्य

है तथा प्रत्येक शब्द का अर्थ एवं भावार्थ भी दिया हुआ है। जो संस्कृत से डरने वाले धर्म प्रेमियों के लिए एक वरदान स्वरूप है। इस जैसी सरल पुस्तिका अन्य देखने में नहीं आती। साथ ही पूज्य आचार्यश्री की परम अनुकम्पा से, संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाइयों एवं बहिनों ने भी विभिन्न स्थानों पर शिक्षण शिविरों में इस पुस्तिका के माध्यम से इस महान् स्तोत्र को जन-जन में अर्थ व सही लय में पढ़ाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। जब किसी शिविर में एक साथ बैठे हजारों शिविरार्थी, एक स्वर में, भक्तिरस में डूबकर इसका पाठ करते या अर्थ समझते दिखाई पड़ते हैं तो चित्त आह्लाद से भर जाता है।

वर्तमान अंग्रेजी के युग में संस्कृत को कष्ट साध्य मानने वाली युवा पीढ़ी को यह पुस्तिका स्तोत्र पाठ पढ़ने व अर्थ समझने में विशिष्ट सहयोगी होगी। इसके माध्यम से सभी, स्तोत्र का भाव समझते हुए, पाठ करके, सातिशय पुण्य का संचय करेंगे। आबाल-वृद्ध को यह पुस्तिका, स्तोत्र का मर्म समझने में अत्यन्त सहायक हो, ऐसी मेरी भावना है।

पूज्य मुनि श्री 108 समतासागरजी महाराज के चरणों में बारम्बार नमन।

रतनलाल बैनाड़ा

आगरा

मंगलाचरण

नमूँ सिद्ध सिद्धान्त को और नमूँ पद पाँच।
जिनके सुमरण जपन से कभी न आती आँच॥1॥

करूँ शुद्ध का ज्ञान मैं और उसी का ध्यान।
उसे जगा लूँ सो रहा जो निज का भगवान॥ 2॥

आदि प्रभु से वीर तक तीर्थंकर चौबीस।
शिवमग के नेता बने इस युग के थे ईश॥ 3॥

फिर गणधर आचार्यवर हुए अनेकानेक।
तिनके पद पंकज नमूँ अपना माथा टेक॥ 4॥

कुन्दकुन्द आचार्य जी हुए दिगम्बर सन्त।
जिनशासन फूला फला किया आप जयवन्त॥ 5॥

मानतुंग आचार्य का भक्तामर स्तोत्र।
अद्भुत अनुपम काव्य है जिन भक्ति का स्रोत॥ 6॥

भक्ति शक्ति महिमा प्रकट करता काव्य अनूप।
झुका प्रभावित होय वह विद्वेषी भी भूप॥ 7॥

दोहों में अब कर रहा इसका मैं अनुवाद।
विद्या गुरु आशीष दो प्रतिपल करता याद॥ 8॥

भक्त रहूँ, भक्ती रहे बस यह मेरी चाह।
यही ध्येय अनुवाद का सभी गहें थुति राह॥ 9॥